गांधी-आंबेडकर के रिश्तो का सच

जब देष में आजादी की जंग लड़ी जा रही थी तभी सोषल जस्टिस की आवाज भी बुलंद हो रही थी। इस लड़ाई में एक ओर महात्मा गांधी थे तो दूसरी ओर डॉक्टर भीमराव आंबेडकर थे। डॉ. आंबेडकर को कांग्रेस की रहनुमाई में चलने वाली आजादी की लड़ाई में कोई दिलचस्पी नहीं थी। वे मानते थे कि अंग्रेज गए तो कांग्रेस राज में दलितों पर फिर सवर्णों का राज हो जाएगा। वे कहते थे कि अंग्रेज राज में एक जैसे कानून और एक षासन की षुरूआत हुई है। कांग्रेस दलितों को देष की राजनीति में उनकी सही जगह और समान अधिकार नहीं देना चाहती है। डॉ. आंबेडकर ने सुधारवादी रवैया न अपनाकर नाइंसाफी, नस्ल और जाति के नाम पर भेदभाव के खिलाफ जंग को हथियार बनाया।

गांधीजी और कांग्रेस के साथ डॉ. आंबेडकर के रिश्ते षुरू में बहुत तल्ख रहे। जब-जब वे चुनाव लड़े कांग्रेस ने उन्हें हराने में कोई कसर नहीं छोड़ी। उनको हिन्दू विरोधी और आजादी के खिलाफ, अंग्रेजों का हमदर्द बताकर बदनाम किया गया। डॉ. साहब भी अपने लोगों से कहते थे कि अपनी सुरक्षा का सबसे अच्छा रास्ता यही है कि गांधीजी से सावधान रहो। उनके अनषन को वे ढकोसला बताते थे। कहते थे गांधीजी के षब्द झूठ और फरेब से भरे होते हैं।

डॉ. आंबेडकर के कांग्रेस से दूर रहने के पीछे क्या था, यह समझने की जरूरत है। सरदार बल्लभ भाई पटेल को 14 अक्टूबर 1946 में लिखे एक पत्र में डॉ. साहब ने पूछा क्या मिस्टर गांधी आपको देष से भी ज्यादा बड़े लगते है? आपको हमेषा यही लगता है कि जो आदमी राश्ट्रवादी है वह कांग्रेसवाला ही होना चाहिए जबकि मेरा मानना है कि कांग्रेसवाला न होने वाला भी नेषनलिस्ट होता है। मैं किसी से भी ज्यादा नेषनलिस्ट हूँ।

बाबा साहेब भीमराव आंबेडकर अपने दलित भाइयों को बराबर समझाते थे कि वे षिक्षित हो, संगठित हों और संघर्श करे। इसलिए वे अपने लोगों को जगाने के काम को तरजीह देते थे। गांधी जी छुआछूत को पाप मानते थे लेकिन आंबेडकर जी उसे ऐसी बीमारी मानते थे जिससे समाज में सडांध पैदा हो गई है। उन्होंने जाति प्रथा पर जोरदार हमला किया। उनकी राय थी कि हिन्दुस्तानी समाज की व्यवस्था जब तक नहीं बदलेगी तब तक कोई तरक्की नहीं होगी।

डॉ. आंबेडकर यों तो षुरू से ही छुआछूत के खिलाफ झंडा उठाए हुए थे किन्तु उनका सबसे ज्यादा नाम स-1927 में महाड़ आंदोलन से हुआ जब एक तालाब से दलितों के पानी लेने पर रोक की खिलाफत करने में उन पर हमला हुआ। स-1193. में नासिक के कालाराम मंदिर में अछूतों के अंदर जाने के लिए आंदोलन चला। इन आंदोलनों से दलितों में नई चेतना जागी।

पहली गोलमेज कांफ्रेंस में, जो स-1930 के जाड़ो में हुई, कांग्रेस षामिल नहीं हुई जबकि मुसलमानों, सिखों, ईसाई और अछूतों के डेलीगेषन तथा हिन्दू महासभा के मेम्बरों ने इसमें हिस्सा लिया। इस सम्मेलन में डॉ. आंबेडकर ने कहा कि दलित वर्ग अपने आप में एक अलग वर्ग है। वह हिन्दू समाज का हिस्सा नहीं है। उन्होंने अलग से निर्वाचक मंडल की मांग की। दूसरी गोलमेज कांफ्रेंस में गांधीजी और डॉ. आंबेडकर में और ज्यादा तल्खी नज़र आई। ब्रिटिष प्रधानमंत्री रैमसे मैकडोनाल्ड ने चुनाव में दलित को अलग निर्वाचन क्षेत्र (कांस्टीच्युएंसी) भी बांट दिया। इसे कम्युनल एवार्ड कहा गया।

गांधीजी कम्युनल एवार्ड के खिलाफ थे। उनका बेबाक बयान था कि इससे हिन्दू समाज में बंटवारा हो जाएगा। उन्होंने कहा कि मैं इस अलगाव का विरोध करूंगा चाहे इसकी कीमत मुझे जान देकर ही क्यों न चुकानी पड़े। गांधीजी उस समय यरवदा जेल में बंदी थे। उन्होंने 20 सितम्बर 1932 की दोपहर से अपना अनषन षुरू कर दिया। गांधीजी के इस एलान के बाद पूरे देष में उनके समर्थन के संदेष मिलने लगे। एक तरह की इमोषनल थ्योरियों ने इसमें हिस्सा लिया। इस सम्मेलन में डॉ. आंबेडकर ने कहा कि दलित वर्ग अपने आप में एक दिन पर दिन बिगड़ती जा रही थी। पूरा देष चिंतित था। गांधीजी के पुत्र श्री देव दास ने गांधीजी के अनषन के छठे दिन जो हालत देखी तो कहा 'पिताजी डूब रहे हैं।' तब तक आंबेडकर जी भी पूना आ गए थे। वे यह मानने को तैयार नहीं थे कि उनके अलावा दलितों-अछूतों का दूसरा कोई रिप्रजेंटेटिव हो सकता है। ये महात्मा अनषन करने वाले कौन है? इन कड़वे बयानों से वहां मौजूद लोग गुस्से में आ गए। तब मद्रास से आए एक और दलित नेता एम.सी. राजा ने आंबेडकर से कहा 'हजारों साल से हम दबे कुचले और अपमानित होते रहे हैं। गांधीजी हमारे लिए अपनी जिंदगी दांव पर लगा रहे हैं। अगर उनकी मौत होती है तो फिर अगले हजारों साल तक हम वहीं पड़े रहेंगे जहां अब तक थे। लोग यही कहेंगे कि हमने उनकी हत्या की है। हिन्दू समाज में इतना बड़ा सैलाब आएगा जो हमें और नीचे फेंक देगा। आंबेडकर जी ने तब कहा-मैं सुलह के लिए तैयार हूँ।

आखिरकार डॉ. आंबेडकर यरवदा जेल में गांधीजी से मिलने आए। गांधीजी की जान बचाने के लिए और अछूतों के हक हकूकों की सलामती के लिए डॉ. आंबेडकर ने 24 सितम्बर 1932 को एक समझौते पर हस्ताक्षर किए जो 'पूना पैक्ट'के नाम से जाना जाता है। इस समझौते पर गांधीजी ने दस्तखत नहीं किए। हिन्दू पक्ष से महामना मदन मोहन मालवीय ने इसमें पहल की। दलित नेताओं ने भी दस्तखत किए। गांधीजी ने तब 26 सितम्बर को अपना अनषन खत्म किया।

पूना पैक्ट को लेकर काफी कुछ उसके पक्ष-विपक्ष में लिखा जा चुका है। एक बात तो साफतौर पर कहीं जा सकती है कि गांधीजी ने अगर अपनी जिंदगी दांव पर लगाकर सवर्ण (हिन्दू समाज) पर दबाव न बनाया होता तो षायद इतनी आसानी से सामाजिक कलंक नहीं मिटता और अगर डॉ. आंबेडकर ने लगातार राजनीतिक दबाव न बनाया होता तो षायद अछूत समाज को पार्लियामेंट, असेम्बली और दूसरे पब्लिक प्लेटफार्म तथा संस्थाओं में जगह नहीं मिलती। रिजर्वेषन भी उसी का एक नतीजा है। आंबेडकर जी ने इसलिए समझौता किया क्योंकि वे जानते थे कि गांधीजी की मौत से दलित-सवर्ण दंगे होते और समाज की खाई पाटने के प्रयासों को पलीता लग जाता।

अफसोस कि षुरूआत में भाईचारे का जो माहौल बना था वह बाद में बिगड़ता गया। डॉ. आंबेडकर का धीरज तब जवाब देने लगा। 13 अक्टूबर 1935 को बाबा साहेब ने बेबसी में एलान किया कि गोकि वे जन्म से हिन्दू थे फिर भी मरते समय हिन्दू नहीं रहेंगे। उन्होंने धर्म बदलने का भी इशारा जताया जिस पर देष में काफी खलबली मच गई थी।

गांधीजी और डॉ. आंबेडकर के आपसी रिष्ते गरम-नरम किस्म के थे। दोनों के सामाजिक लक्ष्य तो एक थे पर रास्ते अलग-अलग थे। गांधीजी मानते थे कि डॉ. साहेब के मन में बहुत कड़वाहट है। वैसे वे बहुत प्रतिभावान हैं। भारत के बाहर उनका बहुत सम्मान है किन्तु भारत में कदम-कदम पर यह एहसास कराया जाता है कि हिन्दू समाज में उनकी एक अछूतवाली हैसियत है। गांधीजी को समाज सुधार के आंदोलनों पर भरोसा था। वे अछूतों को हिन्दू समाज का अभिन्न अंग मानते थे। आंबेडकर जी का मत था कि जातिप्रथा श्रम विभाजन नहीं वरन श्रमिकों का विभाजन है। हिन्दू समाज और कुछ नहीं जातियों का समूह मात्र है।

यह सही है कि डॉ. भीमराव आंबेडकर कांग्रेस के स्वराज आंदोलन के हिमायती नहीं थे, अंग्रेजों के प्रति उनके मन में बहुत सहानुभूति थी, वे उन्हें उद्धारक के रूप में देखते थे लेकिन धीरे-धीरे उनके विचार बदलते गए। उन्होंने देखा अंग्रेज भी अपनी सभ्र बनाए रखने के लिए रईसों, सवर्णों का सहारा ले रहे हैं। फिर भी वे दूसरे वर्ल्डवार में अंग्रेजों के साथ खड़े दिखाई दिए। उन्होंने 1942 में गांधीजी के भारत छोड़ो आंदोलन का भी विरोध किया। साल भर बाद आंबेडकर जी को वायसराय की कार्यकारिणी में षामिल कर लिया गया।

बाद में हालत कुछ ऐसे बदले कि अंग्रेजों ने उन्हें हाषिये पर रखा और वे खुद भी अंग्रेजों से दूर हो गए। देष आजाद हुआ। पहली नेहरू सरकार में डॉ. आंबेडकर को कानूनमंत्री बनाया गया। उन्होंने भी कांग्रेस के लिए अपनी नापसंदगी छोड़ दी। वे संविधानसभा में बंबई से चुनकर आए। नेहरू-पटेल की राय से इतर गांधीजी के परामर्ष पर संविधानसभा में उन्हें ड्राफ्टिंग कमेटी का अध्यक्ष बना दिया गया। संविधान निर्माण में उनकी भूमिका काबिले तारीफ रही। उन्हें संविधान निर्माता की पदवी दी गई।

संविधानसभा में उन्होंने 15 दिसम्बर 1946 को दिए गए अपने भाशण में कहा कि आज हम लोग पोलिटिकल, एकोनामिक तथा सोषल दायरे में अलग-अलग खेमे में हैं। इसके बावजूद कोई ताकत इस देष की एकता को नहीं तोड़ पाएगी। उनका यह भी कहना था कि पोलिटकल डेमोक्रेसी अगर सोषल डेमोक्रेसी के साथ नहीं चलेगी तो डेमोक्रेसी का कोई मतलब नहीं रह जाएगा। नेहरू मंत्रिमंडल में डॉ. आंबेडकर अपनी मन पसंद मिनिस्ट्री नहीं मिलने से नाराज थे। कई पॉलिसी मैटर में भी पीएम नेहरू से वे अलग राय रखते थे। हिन्दू कोड बिल पर नेहरू जी के रवैये से नाराजगी में उन्होंने इस्तीफा तक दे दिया। वे मानते थे कि देष की तेजी से तरक्की स्टेट सोषलिज्म के जरिए ही हो सकती है।

डॉ. भीमराव आंबेडकर को जिंदगी भर इस बात का मलाल रहा कि उनको कभी भी सही ढंग से समझा नहीं गया। तीस के दषक के आखिरी सालों से पचास के दषक तक डॉ. आंबेडकर दलित समाज के हालात सुधारने की लड़ाई लड़ते रहे। चुनावी राजनीति में उन्हें ज्यादा सफलता नहीं मिली तो क्षुब्ध होकर उन्होंने हिन्दू धर्म छोड़कर बौद्ध धर्म अपनाने का एलान करने के साथ 14 अक्टूबर 1956 को नागपुर में कई लाख दलितों के साथ बौद्ध धर्म अपना लिया।

बहुत ज्यादा मेहनत करने से वे काफी कमजोर हो चले थे, कई बीमारियों ने उन्हें घेर लिया था। घरेलू झगड़े उन्हें परेषान किए थे, फाइनेन्षियल दिक्कतें भी बढ़ रही थीं और सबसे ज्यादा अपने ही लोगों के व्यवहार से वे बहुत ज्यादा दु:खी हो चले थे। किस्मत का खेल देखिए कि दलितों को सिक्योरिटी और इज्जत दिलाने के लिए तमाम उपेक्षाओं को सहने वाला यह महापुरूश अपने आखिरी वक्त में भी पूरी तरह अकेला था। 6 दिसम्बर 1956 को वे इस दुनिया को छोड़ गए।

मधुकर त्रिवेदी
मो0 9454508517,
6394740554

भाग्य ने एक ही दिन लिखा दो सुरों का अंतिम विदा गीत...

कभी-कभी समय इतना संवेदनशील हो जाता है कि वह घटनाओं को नहीं, भावनाओं को लिखता है। आज हृदय उसी गहराई से भर उठा है, जब स्मरण होता है उन दो अमर स्वरों का–लता मंगेशकर जी (2022) और आशा भोसले जी (2026)। दोनों बहनें... दोनों युगों की आत्मा... और दोनों ने 92 वर्ष की आयु में, एक ही दिन इस संसार को अलविदा कहा। यह कोई साधारण संयोग नहीं, यह तो मानो ईश्वर की लिखी हुई एक भावपूर्ण कविता है–जहाँ दो सुर, जो जीवन भर साथ गूंजे, अंत में भी एक ही दिन मौन हो गए।

एक स्वर था जो प्रार्थना बनकर आत्मा में उतरता था... और दूसरा वह, जो हर धड़कन में लय बनकर बहता था। लता जी की आवाज जैसे माँ की गोद की शांति, एक निर्मल आरती की पवित्रता थी... और आशा जी की आवाज जीवन की चंचलता, मुस्कान और अनगिनत रंगों का उत्सव। दोनों मिलकर संगीत नहीं, जीवन का संपूर्ण अर्थ रचती थीं।

उनके गीत केवल धुन नहीं थे, वे हमारे जीवन के अध्याय थे– पहला प्यार, पहली खुशी, पहला दर्द, हर अहसास... सब कुछ उनके स्वरों में बसता था। जब हम खुश होते थे, उनके गीत गुनगुनाते थे... और जब दिल टूटता था, तो उनकी ही आवाज में सुकून ढूंढते थे।

आज जब ये दोनों स्वर मौन हो गए हैं, तो लगता है जैसे समय ठहर गया हो... जैसे हवा में एक अनकहा सन्नाटा घुल गया हो... जैसे कुछ अपना बहुत गहरा, बहुत अपना, कहीं दूर चला गया हो। आँखें नम हैं, दिल भारी है, लेकिन एक सुकून भी है–कि वे दोनों अब फिर से साथ हैं... जैसे हमेशा थीं।

कुछ रिश्ते शब्दों से नहीं, आत्मा से जुड़े होते हैं। ये दो बहनें केवल खून का रिश्ता नहीं थीं, ये दो आत्माएँ थीं जो एक ही सुर में बंधी थीं। शायद इसलिए समय ने भी उनकी विदाई को अलग नहीं होने दिया... उन्हें फिर एक साथ, एक ही दिन, उसी अनंत यात्रा पर भेज दिया।

यह अंत नहीं है... यह एक और शुरुआत है–

जहाँ कहीं, किसी अनंत आकाश में,

दो स्वर फिर से मिलकर वही अधूरा गीत पूरा कर रहे होंगे...

अनंत सुरों की इन स्वर-देवियों को अश्रुपूर्ण श्रद्धांजलि।

आप दोनों साथ थीं... साथ हैं... और सदा साथ रहेंगी...

— आचार्य
डॉ. महेंद्र सिंह गोलो

जादुई आवाज की मनमोहिनी गायिका थीं आशा भोंसले

हिंदी फिल्मी गीतों की सुप्रसिद्ध गायिका आशा भोंसले के निधन से पार्श्व गायन के एक युग का अंत हो गया है। हिंदी गीतों के आकाश का एक नक्षत्र, एक धूमकेतु ब्रम्हांड में विलुप्त हो गया है। ऐसा कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि आशा ताई ही महान लता मंगेशकर के बाद भारत की सबसे बड़ी और सबसे सफल पार्श्व गायिका थीं। आशा जी की प्रतिभा, उनका क्रेज और लोकप्रियता लता दीदी के समान ही सर्वव्यापी और चिरस्थाई रहेगी। स्वर कोकिला और भारत रत्न लता मंगेशकर की छोटी बहन आशा भोंसले का जन्म 8 सितंबर 1933 को महाराष्ट्र के सांगली नामक स्थान में हुआ था। जादुई आवाज की मनमोहिनी पार्श्व गायिका आशा भोंसले के पिता दीनानाथ मंगेशकर भी संगीत जगत के सुप्रसिद्ध कलाकार थे। बड़ी दीदी लता मंगेशकर के अलावे आशा जी की और दो बहनें मीना मंगेशकर तथा उषा मंगेशकर भी गायकी से जुड़ी सफल कलाकार रहीं। आशा भोंसले के एकमात्र छोटा भाई हृदय नाथ मंगेशकर भी एक प्रसिद्ध संगीतकार के रूप में जाने जाते हैं। रोमांटिक, दर्द भरे, भक्ति फिल्मी गाने, हर तरह के गीतों को अपनी मोहक आवाज से हिट सुपरहिट करने वाली आशा जी ने गणपत राव भोंसले से पहली शादी की थी। दस हजार से अधिक फिल्मी गीत गाने वाली आशा ताई ने 1980 में मशहूर संगीतकार राहुल देव बर्मन से दूसरी शादी की थी। उल्लेखनीय बात ये है कि जब आशा जी ने पहली शादी की थी उस समय उनकी उम्र सिर्फ 16 साल थी और उनके पति उनसे 16 साल बड़े थे। उनके दूसरे पति आरडी बर्मन उनसे 6 साल छोटे थे।एक समय ऐसा था जब लता मंगेशकर, गीता दत्त, शमशाद बेगम जैसे दिग्गज गायिकाओं के जमाने में आशा भोंसले को कोई भी संगीतकार तवज्जो नहीं दे रहे थे। फिर भी उन्होंने हार ना मानते हुए 'नया दौर', 'तीसरी मंजिल', 'कश्मीर की कली' 'उमराव जान' सहित अन्य अनेक फिल्मी गीतों को अपनी बेहद सुरीली आवाज से सुपरहिट और सदाबहार कर दिए थे। असाधारण और महान गायिका आशा भोंसले का जीवन शुरू से अंत तक बेहद घटनापूर्ण और उतार चढ़ाव भरा रहा। बाल्यावस्था में पिता का साया सर से उठ जाना, प्रथम पति गणपत राव भोंसले से विवाह विच्छेद, गायकी की कला में शुरुआती असफलता। एक समय सबकुछ उनके विपक्ष में चला गया था। उसके बाद सशक्त और अदम्य मनोबल, परिश्रम और लगन के जरिए पार्श्व गायकी में सफलता के शिखर तक पहुंचना। आशा भोंसले की सच्ची जीवन कहानी किसी परी कथा से कम नहीं थी। 2012 में बेटी वर्षा भोंसले की आत्महत्या। फिर तीन साल बाद 2015 में बेटे हेमंत की कैंसर से मौत। दोनों दुखद घटनाएं आशा जी के अंतिम जीवन को अंतहीन दर्द दे गयी थी। आशा भोंसले की सुमधुर आवाज आज भी हमारे कानों में अमृत समान शहद घोल जाती हैं। उनकी अमर आवाज हमेशा संगीत प्रेमियों के कानों में गूंजती रहेगी। महान गायिका को हमारी भावपूर्ण श्रद्धांजलि।

अनित कुमार राय टिंकू,
बाघमारा 6200303595

अंबेडकर जयंती (समानता का उत्सव)

भारत के संविधान निर्माता, महान समाज सुधारक विश्व नायक और 'भारत रत्न' डॉ. भीमराव अंबेडकर की जयंती हर साल 14 अप्रैल को समानता दिवस के रूप में और बाबा साहेब की याद में पूरे उत्साह के साथ मनाई जाती है। यह दिन केवल एक जन्मदिन नहीं, बल्कि करोड़ों लोगों के लिए आत्मसम्मान के साथ जीने और न्याय के प्रति संकल्पित रहने का प्रतीक है।

डॉ. अंबेडकर, जिन्हें हम प्यार से 'बाबासाहब' कहते हैं, का जन्म 14 अप्रैल, 1891 को मध्य प्रदेश के महू में हुआ था। उन्होंने अपना पूरा जीवन छुआछूत, जातिवाद और सामाजिक असमानता के खिलाफ संघर्ष में बिताया।

संविधान के शिल्पकार कहे जाने वाले बाबासाहब ने दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र भारत को एक ऐसा संविधान दिया जो हर नागरिक को बराबरी का अधिकार देता है। आपके व्यक्तित्व की सबसे विशेष बात जिससे सभी को सीखना चाहिए वो है अभावों एवं सीमित संसाधनों से भी असीमित को पा लेना। अपने आप को मेहनत, हिम्मत,लगन, कार्य कौशल से इतना मजबूत बनाना जहां आपकी धर्म जाति नहीं अपितु ज्ञान की रौशनी दिखाई दे। इसीलिए शिक्षा पर जोर देते हुए उन्होंने कहा कि शिक्षा ही वह माध्यम है जिससे दलित और वंचित वर्ग सदियों पुरानी सामाजिक एवं मानसिक सोच की बेड़ियाँ तोड़ सकते हैं।

'शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो ',उनका नारा था। जिसपर उन्होंने जीवन पर्यंत अमल किया।उन्होंने हिंदू कोड बिल' के माध्यम दलितों एवं महिलाओं के अधिकारों के लिए पुरजोर कोशिशें की।

उन्होंने समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व और तर्कसंगतता (तर्क) के आधार पर हिंदू धर्म की जाति व्यवस्था को त्यागकर बुद्ध के धम्म को अपनाया, जिसे उन्होंने व्यक्तिगत मुक्ति और सामाजिक न्याय का मार्ग माना।

उन्होंने 14 अक्टूबर 1956 को नागपुर में अपने लाखों अनुयायियों के साथ बौद्ध धर्म (नवयान) अपनाकर भारत में सामाजिक-सांस्कृतिक क्रांति की शुरुआत की।

उन्हीं की कोशिशों के परिणामस्वरूप दलितों को न्याय मिला है। हम देखते हैं कि अंबेडकर जयंती और दलित आंदोलनों में 'जय भीम' का नारा गूँजता रहता है। यह केवल एक अभिवादन नहीं, बल्कि एक विचारधारा है। माना जाता है कि 'जय भीम' के नारे की शुरुआत बाबासाहब के अनुयायी बाबू हरदास एल.एन. ने 1930 के दशक में की थी।

'जय भीम' का सीधा अर्थ है 'भीमराव की विजय हो' , उनके विचारों की जीत हो। यह नारा जाति और धर्म की दीवारों को तोड़कर शोषित वर्गों को एक सूत्र में पिरोता है। यह आत्मसम्मान की अभिव्यक्ति है।

लेकिन जब मैं समाज में यह देखती हूं कि जय भीम कहने वालों को अछूत समझ लिया जाता है या आरक्षित वर्ग समझ दूरी बना ली जाती है तो बड़ी तकलीफ़ होती है ,यह जानकर कि जिनकी कोशिशों से हमारे देश का संविधान लिखा गया, देश में ही नहीं विदेश में भी जिन्होंने अपने ज्ञान का परचम लहराया। ऐसे महापुरुष के प्रति भी लोग समानता पूर्ण व्यवहार नहीं रख पाते तो मुझे लगता है अभी हमारा सही मायने में शिक्षित,सभ्य और समझदार नागरिक बनना बाकी है। एक पंक्ति में कहूं तो इंसान का इंसान बनना ही बाकी है।

अंबेडकर जयंती मनाने का असली उद्देश्य केवल उनकी प्रतिमा पर माल्यार्पण करना नहीं है, बल्कि उनके द्वारा दिखाए गए स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के मार्ग पर चलना है। 'जय भीम' का नारा हमें याद दिलाता है कि जब तक समाज के अंतिम व्यक्ति को न्याय नहीं मिलता, हमारा संघर्ष अधूरा है।

डॉ. बी.आर. अंबेडकर जी के अनुसार 'समानता एक कल्पना हो सकती है, लेकिन फिर भी इसे एक शासी सिद्धांत के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।'

आज के दौर में जब हम डिजिटल इंडिया और प्रगति की बात करते हैं, बाबासाहब के विचार और भी प्रासंगिक हो जाते हैं। विशेष रूप से समानता, शिक्षा, और सामाजिक न्याय आज के समय में और भी अधिक प्रासंगिक हैं। वे डिजिटल विभाजन को दूर करने, तकनीक के माध्यम से हाशिए पर पड़े समुदायों को सशक्त बनाने एवं ऑनलाइन मंचों पर लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा करने के लिए एक मजबूत संवैधानिक और नैतिक आधार प्रदान करते हैं।

हिमाद्री 'समर्थ'
जयपुर राजस्थान